वर्ष-6 अंक-4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2016 मूल्य - ₹ 25

हिन्दी काव्य की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस परस

अब्दुल रहीम खान-ए-खाना

जन्म- 17 दिसम्बर 1556 निधन-1627

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हमपै धरैं, याते नीचे नैन।।

ए रहीम दर-दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहिं।।

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीकै दिन आइहैं, बनत न लगिहै बेर।।

सर सूखे पंछी उड़ैं, औरै सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कँह जाहिं।।

वर्ष : 6 अंक : 4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2016 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक मंडल
डा. एल.पी. पाण्डेय
अभिमन्यु कुमार पाठक
अरुण कुमार पाठक

संपादक
डॉ अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि.
लखनऊ
मो. 9696433312

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डा. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ से मुद्रित कराकर सी-49, बटलर पैलेस कालोनी, जापलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन हमारा कर्त्तव्य है		2

श्रद्धासुमन

बाबू जी मेरे आयेंगे	डॉ. अनिल कुमार पाठक	4

कालजयी

निशा पुकारती रही,रुका न चाँद...	पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
दोहे	रहीम जी	6
आमंत्रण	आचार्य राम चन्द्र शुक्ल	7
निराशा	बेढब बनारसी	8

समय के सारथी

मिलों का धूम फैला है	अशोक कुमार पाण्डेय'अशोक'	9
कुछ ऐसे भी लोग	चन्द्रशेखर सिंह 'चन्द्र'	10
सभ्यता के नयन	प्रेमचन्द्र सैनी	11
न बैठो दूर	शिवभजन कमलेश	12
मुस्कानों की मंजुषा में	डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकंड'	13
धरती का चाँद	प्रेमचन्द्र गुप्त 'विशाल'	14
सब के मन को भाती है	दयानन्द जड़िया 'अबोध'	15
अधरों की वंशी बन जाऊँ	देवकी नन्दन 'शांत	16
खुशी की रौशनी	ज्योतिशेखर	17
सत्य के श्रेष्ठ अगीत	डॉ. रंगनाथ मिश्र	18
स्वच्छन्दता	डॉ. गौरीशंकर पाण्डेय 'अरविन्द	19
प्रकृति प्रगति संग्राम	डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह	20
मन मन्दिर की ओर चलें, हम	डॉ. किशोरी शरण शर्मा	21

कलरव

सारा आकाश तुम्हारा है	रमेश गुप्त	22
चलो समय के साथ	सुश्री इंदिरा परमार	23

नारीस्वर

कर्म सुगन्ध	रश्मि अग्रवाल	24
दीप बालें	अनीता श्रीवास्तव	25
मेरे राम!कहाँ हो, आओ	डॉ. विद्या विन्दु सिंह	26
कहाँ पाएंगे, अपना निशान	डा नलिनी पुरोहित	27
मेरा देश	विशाखा चौरसिया	28
मुक्तिबोध सरीखा कवि	डॉ. अमिता दुबे	29
ऐसा लखनऊ शहर हमारा	रश्मि कुशवाहा	30
गजल	गीता श्रीवास्तव	31
आ गया बसन्त आने दो	डॉ. शान्तिदेव बाला	32
चिंगारी	कीर्ति	33

नवोदित रचनाकार

काम करें दिन रात हम	विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'	34
आपकी तमन्ना थी	पं. प्रवीन त्रिपाठी	35
मुक्तक	योगेन्द्र वर्मा 'व्योम'	36
आप मुझे नहीं जानते	अजय सिंह वर्मा	37
आज का आदमी	डॉ. अवधेश कुमार श्रीवास्तव	38
सुदूर मेरा लक्ष्य	मेदिनी कुमार केवल	39
बुढ़ापा	कुलदीप सिंह सोनी	40

पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन हमारा कर्त्तव्य है

विश्व की प्रायः सभी संस्कृतियों में माता–पिता एवं पूर्वजों के विशेष स्मरण हेतु तिथि, दिवस या पक्ष आदि से निर्धारित हैं। हमें अपने पूर्वजों यथा– अपने माता–पिता का सदैव कृतज्ञ होना चाहिये और उन्हें विस्मृत करने जैसा अपराध नहीं करना चाहिए जिससे उनके सन्दर्भ में याद करने जैसे शब्दों का कोई औचित्य न रह जाय। आर्ष साहित्य में पितरों के प्रति अपार श्रद्धा प्रदर्शित की गयी है। ऋग्वेद 10वें मण्डल के 15वें सूक्त की प्रारम्भिक चौदह ऋचाओं में पितरों का स्मरण करते हुये उन्हें हविग्रहण का आमन्त्रण दिया गया है। इसी प्रकार अथर्ववेद के 12वें काण्ड के प्रथम सूक्त (पृथ्वी सूक्त) के द्रष्टा ऋषि ने मातृभूमि के प्रति अपार भक्ति प्रकट करते हुये पृथ्वी के चेतनात्मक स्वरूप को माता के रूप में, या कहें जन्म देने तथा पालन आदि करने वाले रूप में वर्णित किया गया है। भारतीय संस्कृति में पितरों के विशेष स्मरण व तर्पण के लिये आश्विन मास के कृष्ण पक्ष को उचित समय माना गया है जिससे पितृ पक्ष भी कहते हैं। ऐसा विश्वास है कि उक्त पक्ष में हमारे पितर इस भू–लोक पर अपनी संतानों एवं वंशजों के आसपास विचरण करते हैं।

पिछले दिनों पितृ पक्ष में एक मित्र मेरे घर पर पधारे। वे माता–पिता के प्रति समर्पित सन्तान रहे तथा उन्होंने अपने माता–पिता की सदैव सेवा–सुश्रूषा की, किन्तु उनकी इस बात पर अलग राय है कि पितरों के तर्पण के नाम पर अनावश्यक कर्मकाण्ड क्यों किये जाते हैं ?उन्होंने कबीरदास जी के इस कथन को उद्धृत करते हुए कहा कि– ''जीवत पितर कूँ बोले अपराध, मरे पाछे देहि सराध।

कहे कबीर मोहे अचरज आवे, कौआ खाय पितर कूँ पावे।''

उन्होंने इसके साथ ही लोक प्रचलित इस उक्ति का भी उल्लेख किया कि–

''जियतु मातु सो दंगम दंगा। मरी मात पहुँचावै गंगा।''

उनकी बातों को सुनकर मैं थोड़ी देर के लिये मौन रहा। उन्हें लगा कि मैं उनकी बातों से पूरी तरह सहमत हूँ। इसलिये शायद उनके विचारों को मौन स्वीकृति प्रदान कर रहा हूँ। थोड़ी देर बाद मैंने उनसे आग्रह किया कि कबीरदास जी का उक्त कथन तथा आप द्वारा उद्धृत लोकोक्ति अपनी जगह पूरी तरह सही हैं और इनसे मैं भी इस सीमा तक सहमत हूँ कि ऐसे व्यक्ति को, जिसने अपने माता–पिता तथा पूर्वजों के जीवन काल में उनकी उपेक्षा की, उन्हें प्रताड़ित किया या फिर स्वयं सक्षम होते हुए भी उनकी सेवा–सुश्रूषा न कर उन्हें वृद्धाश्रम जैसे स्थान पर भेज कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली, उसे दिवंगत माता–पिता तथा पूर्वजों के प्रति किसी प्रकार के तर्पण–कर्म या संस्कार आदि करने का कोई अधिकार नहीं है। किंतु इसके

विपरीत ऐसा व्यक्ति जिसने अपने माता–पिता व पूर्वजों की उनके जीवनकाल में अपनी क्षमता के अनुरूप उनकी देखभाल करते हुए उन्हें सादर सम्मान प्रदान कियाय यदि वे उनके शरीरत्याग के पश्चात् उनका स्मरण करते हैं, उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, तर्पण करते हैं या उनके सम्मान में कोई आयोजन करते हैं तो ऐसे व्यक्ति एवं उनके कर्म, पूज्य एवं सम्मान के योग्य हैं। ऐसे व्यक्तियों के संदर्भ में उपर्युक्त कथन व उक्तियाँ प्रासंगिक नहीं कही जा सकतीं।

माता–पिता व पूर्वजों का स्नेहाशीष उनके जीवन काल में तो प्राप्त ही होता है, पुनः उनके स्थूल शरीर के न रहने पर सूक्ष्म रूप से उनका आशीर्वाद हमें सदैव मिलता रहता है। वे हमें निरन्तर प्रेरणा देते रहते हैं, हमारा मार्गदर्शन करते रहते हैं। मैं तो आज भी जब दिग्भ्रमित हो जाता हूँ तो माता–पिता का पुण्य स्मरण कर उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त कर लेता हूँ। उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा व आस्था हमें उपयुक्त मार्ग के चयन के लिए संकेत प्रदान कर देती है। उनकी स्नेहिल छाया गीता के "**योगक्षेमं वहाम्यहम्**" जैसी है। वे "गोपाल" जैसे हैं जो केवल उस बालक को ही दिखाई पड़ते हैं जो उन पर अपार श्रद्धा–विश्वास रखता है। इसीलिए जब भी वह बालक उन्हें याद करता है या उसे "गोपाल" से किसी सहायता की आवश्यकता पड़ती है तो "गोपाल" वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। इसीलिए मेरा मानना है कि माता–पिता तथा पूर्वजों के प्रति सदैव कृतज्ञता का ज्ञापन व उनका स्मरण हमारा अनिवार्य कर्तव्य और दायित्व है।यह हमारे लिए संजीवनी के समान तो है ही, उनके प्रति हमारी आत्मीयता को प्रदर्शित करता है।

सम्भव है कि मैं अपने भावों के प्रवाह में कतिपय ऐसी बातें कह गया होऊँ जो रुचिकर न हों, उनके लिए मैं विनम्रतापूर्वक क्षमाप्रार्थी हूँ।

सदा की भाँति आगे भी आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

शुभकामनाओं के साथ,

डा० अनिल कुमार

बाबू जी मेरे आयेंगे

-डा0 अनिल कुमार पाठक

सुन मेरी सिसकी औ तड़पन,
बहते आँसू,रुकती धड़कन,
वे खुद ही न रुक पायेंगे।
बाबू जी मेरे आयेंगे।।

खोली, जबसे आँखें हमने,
साकार हुए सारे सपने,
तो कैसे अब ठुकरायेंगे?
बाबू जी मेरे आयेंगे।।

अपना भविष्य करके स्वाहा,
सपने में भी पर–हित चाहा,
अब निष्ठुर क्यों हो जायेंगे?
बाबू जी मेरे आयेंगे।।

विश्वास सदा मेरा उन पर,
हैं, कृपालु, वे हर पल, सब पर,
भला, हमें क्यूँ तड़पायेंगे?
बाबू जी मेरे आयेंगे ।।

बेचैन, हृदय की करुण कथा,
इस पीड़ित मन की मर्म व्यथा,
सुन मर्माहत हो जायेंगे,
बाबू जी मेरे आयेंगे।।

❖❖❖

निशा पुकारती रही, रुका न चाँद, एक पल

-पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

निशा पुकारती रही, रुका न चाँद, एक पल।

चला गया, प्रवाह सा,
छोड़, एक आह सा,
समीर काँप सा उठा,
भर रहा उसाँस सा।

देखता ही रह गया, तारकों का श्वेत –दल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद, एक पल।।

रात साथ जो रहा,
प्रभात तक चला नहीं,
दीप तो बना दिया,
पतंग सा जला नहीं।

कह रहा है आसमान, प्यार भी है, एक छल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद, एक पल।।

ओस अश्रु को बहा,
पंथ को निहारती,
अभाग्य, साथ जो रहा,
जीत में भी हारती।

विरह–समुद्र में मिला, निराश को कभी न थल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद, एक पल।।

❖❖❖

दोहे

- रहीम जी

बड़े बड़ाई ना करें, बड़ो न बोलें बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल।।

टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार।।

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजै, तजै सफेदी चून।।

रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस केहि काम को, रहिबो आपुहि आप।।

रहिमन सुधि सबते भली, लगै जो बारंबार।
बिछुरे मानुष फिर मिलें, यहै जान अवतार।।

रहिमन तीन प्रकार ते, हित, अनहित पहिचानि।
परबस परे, परोस बस, परे मामिला जानि।।

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय।।

रहिमन निज संपति बिना, कोउ न विपत्ति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय।।

रहिमन विपदा हूँ भली, जो थोरे दिन होय।
हित–अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय।।

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात।
सदा रहै नहिं एक सी, का रहीम पछितात।।

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूकि सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूकि की हूक।।

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे–चाटे स्वान के, दुहूँ भाँति विपरीति।।

❖❖❖

आमंत्रण

- आचार्य राम चन्द्र शुक्ल

(1)

दृग के प्रति रूप सरोज हमारे,
उन्हें जग ज्योति जगाती जहाँ,
जब बीच कलंब–करंबित कूल से,
दूर छटा छहराती जहाँ।
घन अंजन–वर्ण खड़े, तृण जाल को
झाईं पड़ी दरसाती जहाँ,
बिखरे बक के निखरे सित पंख,
बिलोक बकी बिक जाती जहाँ ।।

(2)

द्रुम–अंकित, दूब भरी, जलखंड,
जड़ी धरती छबि छाती जहाँ,
हर हीरकप्रभा ढल–हेम मरक्त– ,
चंद्रकला हैं चढ़ाती जहाँ।
हँसती मृदुमूर्ति कलाधर की,
कुमुदों के कलाप खिलाती जहाँ,
घनचित्रित अंबर अंक धरे–
सुषमा सरसी सरसाती जहाँ ।।

(3)

निधि खोल किसानों के धूल–सने,
श्रम का फल भूमि बिछाती जहाँ,
चुन के, कुछ चोंच चला करके,
चिड़िया निज भाग बँटाती जहाँ।
कगरों पर काँस की फैली हुई,
धवली अवली लहराती जहाँ,
मिल गोपों की टोली कछार के बीच,
हैं गातीं औ गाय चराती जहाँ ।।

(4)

जननी–धरणी निज अंक लिए,
बहु कीट, पतंग खेलाती जहाँ,
ममता से भरी हरी बाँह की छाँह,
पसार के नीड़ बसाती जहाँ।
मृदु वाणी, मनोहर वर्ण अनेक,
लगाकर पंख उड़ाती जहाँ,
उजली–कँकरीली तटी में धँसी,
तनु धार लटी बल खाती जहाँ ।।

(5)

दल–राशि उठी खरे आतप में,
हिल चंचल चौंध मचाती जहाँ,
उस एक हरे रंग में हलकी,
गहरी लहरी पड़ जाती जहाँ।
कल कर्बुरता नभ की प्रतिबिंबित,
खंजन में मन भाती जहाँ,
कविता, वह! हाथ उठाए हुए,
चलिए कविवृंद! बुलाती वहाँ ।।

❖❖❖

निराशा

विश्व सूना आज भगवन।
हो गयी दुनिया नहीं मालूम,
क्यों नाराज भगवन।
पास हूँ एम.ए. एल एल. बी.,
और उस पर पास बी. टी.,
नौकरी मिलती नहीं फिर भी,
कहीं पर आज भगवन।
कर्ज ले कपड़े मँगाए,
सूट फिर उनके सिलाए,
माँगता दरजी सिलाई,
और दाम बजाज भगवन।
कट गया सारा वकेशन,
भेजने में अप्लिकेशन,
बस इसी में कर रहा था,
दिवस रात रियाज भगवन।
अरजियों की कापियाँ हैं,
डिगरियों की गठरियाँ हैं,
पर नहीं घर में कहीं पर,
सेर भर भी नाज भगवन।
प्रेम पथ में लोग चलते,
मोटरों में हैं मचलते,
और सोने को यहाँ,
मिलता न एक गैराज भगवन।
विश्व सूना आज भगवन।

❖❖❖

बिजली फेल होने पर

-बेढब बनारसी

फेल बिजली हो गयी है,
रात मेरे ही भवन में आज आकर, खो गयी है।
आ रही थीं वह लिए थाली मुझे भोजन खिलाने,
मैं उसी दम था झपटकर जा रहा रूमाल लाने।
देख पाया मैं न उनको. वह न मुझको देख पायीं,
रेलगाड़ी से लड़े दोनों, धरा पर हुए शायी ।
पेट पर रसदार जलता शाक, पूरी पाँव पर थीं,
आँख में चटनी गिरी जो चटपटेपन की निकर थी।
बाल पर सिरका गिरा जैसे ललित लोशन उड़ेला,
क्रीम भुर्ते का लगा मुखपर हुआ मेरा उजेला।
ले रहे हैं स्वाद सब अवयव, न रसना रसमयी है ।
फेल बिजली हो गयी है ।

❖❖❖

❖❖❖

मिलों का धूम फैला है

विष–तक्षकों के मुख–
में ही बसता था,कभी–
आज धरती का हर आदमी विषैला है।
पशुओं में सीमित, कभी–
थी, पशुता परन्तु–
दीख रहा, सकल समाज ही बनैला है।
कामिनी की कुचिंत लटें–
व वहीं कालिमा थी,
वक्र चाल सबकी, सभी का मन मैला है।
यज्ञ के सुगन्धित धुयें–
की धूम देखी, कभी,
चारों ओर, अब तो, मिलों का धूम फैला है।

नवीन भाव लाते हो

–अशोक कुमार पाण्डेय 'अशोक'

मेरे अश्रुओं की लड़ी–
देखकर, बोला विश्व–
कवि हो, कुशल सुधा–रस बरसाते हो।
अन्तर से निकले–
कराह–कोष देख, कहा–
शब्द के चयन में, कमाल दिखलाते हो।
स्वर दीनता का निकला–
तो सबने यों कहा,
कल्पना–कला से मित्र उर हरषाते हो।
सुन के व्यथा की कथा,
बोला, जग हो प्रवीण,
काव्य में, अलौकिक नवीन भाव लाते हो।

बसन्त के प्रभात की

पीले वस्त्र शोभित नहीं–
हैं, सरसों के फूल,
नवनीत के समान कोमल है, गात की–
अधखुली आँखें हैं।
नहीं, ये अधखिले कंज,
अलकें नहीं हैं, छवि भ्रमर–जमात की।
हारावली, मोतियों की–
है, नहीं, उरोजों बीच,
धार, दो नगों के मध्य बहती प्रपात की।
ऐसी, खड़ी बाला है–
अकेली, अलबेली मानों–
नवल नवेली है, बसन्त के प्रभात की।

❖❖❖

कुछ ऐसे भी लोग

चन्द्रशेखर सिंह 'चन्द्र'

धार सुधा रसना सों बहै, उर में बिष सिन्धु अगाध भरे हैं,
ऊपर उज्ज्वलता बिखरी पर, भीतर अन्तस काला करे हैं।
काम बनै जँह औरेन को तहँ, राहु से केतु से आनि अरे हैं,
राम को नाम सदा मुख में, पर काँख में तीक्षण छूरी धरे हैं।

खुदि दुष्टता के करै काम मुला, दुसरेन का दुष्ट बतावति हैं,
अपनी मनमानी हमेशा करैं, औ केहू पै दया नहि लावति हैं।
मन माँ भरे द्वेश अपार हैं, पै, अउरेन का बेदु पढ़ावति हैं,
करनी करैं रावन कैसि सदा, औ चरित्तर राम के गावति हैं।

अपनै दुखु है,दुखु औरेन का, कटु शब्दन ते नित क्वाँचा करैं,
कहिका बिगरै कब कौनी तना,उठि भोर ते साँझ लौं स्वाँचा करैं।
धरमातमा हैं बड़े साँचे बनैं, मुलु औरेन का तनु न्चाचा करैं,
अपनी करनी तन ख्याल नहीं, दुसरेन की कुन्डली बाँचा करैं।

❖❖❖

सभ्यता के नयन

– प्रेम चन्द्र सैनी

पीड़ितों की पीर की, अनुभूति मुझको है रुलाती,
अर्चना, आधार बनती, भावना का मन लुभाती।
साधना के क्षण कँटीले,
भाव हो जाते चुटीले।
हड्डियों की राख करती,
सभ्यता के नयन गीले।
शोक या प्रतिकार डूबी, जिन्दगी संत्रास लाती।
पीड़ितों की पीर की अनुभूति मुझको है रुलाती।
झुलस जाती नयी फसलें,
धरा दुख में लीन होती।
गरल घुल जाता पावन में,
प्रलय विष के बीज बोती।
देख मानव का पतन–आदर्श की फिर याद आती।
पीड़ितों की पीर की अनुभूति मुझको है रुलाती।
भले भायें या न भायें,
व्यर्थ हैं ये स्वार्थ–चाहें।
ज्योति होती क्षीण जब–जब,
माँगते हैं दीप राहें।
जब मनुजता भावना के, जागरण का गीत गाती।
पीड़ितों की पीर की, अनुभूति मुझको है रुलाती।
व्यर्थ सब उपलब्धियाँ हैं,
व्यर्थ सारी योजनाएँ।
दृष्टि बदले यदि मनुज की,
सृष्टि जी भर मुस्कराए।
रचो वह रचना कि जिसको, देख दुनिया सिर झुकाती।
पीड़ितों की पीर की अनुभूति मुझको है रुलाती।

❖❖❖

न बैठो दूर

- शिवभजन कमलेश

करो हँस, फागुन का सम्मान,
न बैठो दूर, भृकुटियाँ–तान,
प्रीति की धृति का क्या होगा?
हृदय की गति का क्या होगा?
बनी वांछा मेरी जीवन्त,
स्वप्न–संसार हुआ कुलवन्त।
प्रणय के घटक बने सामन्त,
साथ में नायक, स्वयं बसन्त।
न समझीं अगर मनोविज्ञान,
न फैली मुख पर मृदु–मुस्कान।
मौन स्वीकृति का क्या होगा?
हृदय की गति का क्या होगा?
वल्लरी लगी वृक्ष के वक्ष,
तितलिका पुष्प–प्रेम में दक्ष।
प्रश्न करता तुमसे मन–यक्ष,
हृदय–दृग लेते किसका पक्ष?
अपेक्षित, उत्तर–सँग अवदान,
और यदि, जगा न अन्तर्ज्ञान।
क्षणों की क्षति का क्या होगा?
हृदय की गति का क्या होगा?
तुम्हारी मुख–मुद्रा गम्भीर,
कि ज्यों,सम्वादों–बीच लकीर।
समुत्सुक मेरा चित्त अधीर,
लाँघने को संयम–प्राचीर।
मान ही बना रहा व्यवधान,
प्रेम यदि हुआ न आयुष्मान।
अकथ झंकृति का क्या होगा?
हृदय की गति का क्या होगा?

❖❖❖

मुस्कानों की मंजूषा में

- डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकंठ'

मानस की मंजुल मृदुल सुरभि–
मुस्कानों की मंजूषा में।
मुखराकुल उर की चटुल चहक,
खुल–खिल उठती प्रत्यूषा में।

जगती के आँगन में जगमग,
वह मौन मुखर मुस्कान–प्रभा।
देती प्रतिभा सागर उँड़ेल,
अभिनव सम्मोहनमयी शुभा।

कितने ही होठ ललकते हैं,
उसका प्रतिभा–जल पीने को।
कितने परिरम्भ मचलाते हैं,
बँधकर बाँहों में जीने को।

कोमल कलियों की मुस्कानें–
कहतीं हैं, मधुपों भूलो मत,
मधुपायी मनुहारें कहतीं,
कलियों–अलियों को शूलो मत।

कोई अस्फुट स्वर सुन पड़ता–
भूलो भटको तुम भूल करो,
परखो इन कंटक कुंजों को,
अटकों–भूटकों का शूल हरो।

कंचनी कलश वश में करना,
साहित्यकार का काम नहीं।
मिथ्याशंसा के सिर चढ़कर–
कब हुआ कौन, गुमनाम नहीं?

चुपके कोई कहता मुझसे–
कवि रवि के भास्वर छन्द रचो।
'शितिकंठ' कलापो जग–वन में,
विषहर स्वर्मंत्र अबंध रचो।

❖❖❖

धरती का चाँद

-प्रेम चन्द्र गुप्त 'विशाल'

ये झुके से नयन, शीश काली घटा,
साँवरी चूनरी की निराली छटा।
लग रही, इस तरह हो, भली राधिके,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।
तन पे पीले बसन, गंध की मृदु चुभन,
स्वर लहर कर रही है, मेरा व्यग्र मन।
कोई कुछ भी कहे, पर कहूँगा, सदा,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।
पथ मिलन का, बड़ा है, सघन, साँवरी,
बैठ, मन–यान चलदी, कहाँ बावरी।
जग के नयनों में तम, पर मुझे दीखता,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।
बह रहा है, निरंतर, मेरा मन तरल,
चाँद उसमें खड़ा किन्तु देता गरल।
मैं जहाँ भी रहा, देखता ही रहा,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।
शीतली छाँव में बढ़ रही है, तपन,
किन्तु अपलक तुझे देखते हैं, नयन।
आस है, देखता, मैं रहूँगा सदा,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।

❖❖❖

सब के मन को भातीं हैं

-दयानंद जड़िया 'अबोध'

विविध संस्कृतियाँ जब मिलकर,
एक मंच पर आती हैं।
एक नया सा रूप धार, तब–
सब के मन को भातीं हैं।

इन्द्र धनुष के सप्त रंग मिल, सह अस्तित्व बताते हैं।
युवा–बृद्ध– बालक–नर–नारी, सबका उर हर्षाते हैं।।
सप्त स्वरों से निष्पादित स्वर ही, संगीत कहाता है।
सरिताओं का सुन्दर संगम, शुचि–प्रयाग कहलाता है।।

मिल–जुल रहना ही तो जग में,
मानवता बतलाती है।
उन्नत मानव–जीवन हित जो–
मार्ग प्रशस्त कराती है।।

स्नेह और सौहार्द त्याग कर, कौन सुखी बन पाया है।
कौन अकेले संघर्षों से, इस जग में लड़ पाया हैं।।
उन्नत राष्ट्र बनाना हो, तो, प्रेम सूत्र में बँध जाओ।
बन 'अबोध' निज उर–अन्तर में, घृणा भाव मत उपजाओ।।

अलग–अलग बिखरी सीकें तो,
कूड़ा सम दिखलाती हैं।
किन्तु इकट्ठी हो, झाड़ू बन,
कूड़ा दूर हटाती है।।

❖❖❖

अधरों की वंशी बन जाऊँ

- देवकी नन्दन 'शान्त'

दीपक बन जाऊँ या फिर मैं, दीपक की बाती बन जाऊँ,
दीपक–बाती क्या बनना है, दिपती लौ घृत की बन जाऊँ।
दीपक–बाती घृत–युक्त लौ से, अन्तर्मन की ज्योति जगाकर,
मन मन्दिर में बैठा सोचूँ, पूजा की थाली बन जाऊँ।
पूजा की थाली की शोभा, चन्दन, अक्षत, सुमन सुगंधित।
खूशबू चाह रही है मैं भी शीतल चन्दन सी बन जाऊँ।।
शीतल चन्दन की खुशबू में, रंगों का एक इन्द्रधनुष है,
इन्द्रधनुष की है अभिलाषा,तान मैं सरगम की बन जाऊँ।
सरगम के इन 'शान्त' सुरों में,मिश्रित रागों का गुंजन है।
तान कहे मैं भी कान्हा के, अधरों की वंशी बन जाऊँ।

गाँठ का अहसास भी होगा

न भावुकता लपेटे और न गम्भीरता ओढ़ें,
सरलता और सजगता हो जिधर खुद को मोड़ें।
कभी रुकने न दें, खुशियों को अपनी बाँटने का क्रम,
दुखी मन को हँसाने का कोई अवसर नहीं छोड़ें।
किसी के दिल को पहुँचे ठेस, ऐसी बात मत कीजे,
अगर मुमकिन हो तो टूटे हुए रिश्तों को फिर जोड़ें।
जुड़ेगा फिर जो रिश्ता, गाँठ का अहसास भी होगा,
ये धागा है बहुत नाजुक इसे झटके से मत तोड़ें।
कभी तो 'शान्त' चिन्तन की ये धारा मोड़कर देखें,
सुधा रस से भरे माटी के इस घट को न यूँ फोड़ें।

❖❖❖

खुशी की रौशनी

- ज्योति शेखर

हमारे इस मरुस्थल को समन्दर देने वाले थे,
महल उनका कहाँ है, जो हमें घर देने वाले थे।
धुआँ बारूद का पी के अंधी हो गईं आँखें,
जिन्हें तुम अम्न का रंगीन मंजर देने वाले थे।
मरा फुटपाथ पर जो उसका इक वारिस नहीं निकला,
सुना था आप फुटपाथों को बिस्तर देने वाले थे।
वो, जिनके होठ चारण हैं, कलम यशगान हैं साथी,
हुकूमत के ये चातक क्रान्ति को स्वर देने वाले थे।
ये तुम हो जिनकी खातिर ये वतन बस एक कुर्सी है,
वो हम थे जो वतन के वास्ते सर देने वाले थे।
वो सूरज थे जो खुद डूबे, सियासत के अँधेरे में,
वो हर घर में खुशी की रौशनी भर देने वाले थे।

घर-आँगन भीगेगा

उथले जल में उतरा जो चट्टानों से टकरायेगा,
पीड़ा को सागर कर दो तो ये सागर मोती देगा।
इतना करना मेरे साथ दिल का द्वार खुला रखना,
प्यार से भरता जायेगा ये उम्र से ज्यों रीतेगा।
मुझको भुलाओगे तो राहें रेतीली हो जायेंगी,
मुझको याद करोगे तो सारा घर–आँगन भीगेगा।
शायद तुम पहचान सकोगे मेरे स्वर को, शब्दों को,
वक्त दबे पावों आएगा, आकर, आँखें मीचेगा।
हम बलिदानों वाले मोहरे लेकर बाजी खेले थे,
हमको पता था हम हारेंगे और वो बाजी जीतेगा।
तेरे चित्र बनाते हैं हम, सूनी स्याह गुफाओं में,
कल ये तीर्थ बनेंगी और जग आकर शीश झुकायेगा।

❖❖❖

'सत्य' के श्रेष्ठ अगीत

-डा. रंगनाथ मिश्र

आओ, हम राष्ट्र को जगायें,
आजादी का जश्न मनाना
हमारी मजबूरी नहीं
अपितु कर्तव्य है
आओ हम सब मिलकर
विश्व–बन्धुता को अपनायें
स्वराष्ट्र को प्रगति–पथ पर
आगे बढ़ायें... ।

देवनागरी को अपनायें... ।
हिन्दी है जन–जन की भाषा
भारत माता की अभिलाषा
बने राष्ट्रभाषा अब हिन्दी
बने विश्व भाषा फिर हिन्दी
सब बहनों की बड़ी बहन हैं
हिन्दी सबका मान बढ़ाती
हिन्दी का अभियान चलायें... ।

दलितों के प्रति मत करो अन्याय.. ।
उन्हें भी दो समानता से
जीने का अधिकार
अन्यथा उनकी भावी पीढ़ी
धिक्कारेगी और लेगी प्रतिकार
अतःओ समाज के ठेकेदारों ,
ऊँच –नीच की खाईं पाटो
दो शोषितों को भी न्याय.. ।

सपनों में मिलने तुम आये ।
आये तुम धीरे से तन छुआ,
आँखें भर आईं फिर दी दुआ,
मौन स्तब्ध साक्षात हुआ
सहसा विश्वास जगा मिलकर,
मन को तुम आज बहुत भाये ।

दिन वो काफूर हो गये ।
जब से तुम ओझल से हो गये,
सारे सम्बन्ध ढह गये,
पीड़ाओं ने डेरा डाला
जीवन में द्वंद्व बढ़ गये
मिलने जो आते थे प्रायः
वही आज दूर हो गए ।

आकुलता सहज हो गई ।
चलना ही नियति है हमारी,
जलना ही प्रकृति है हमारी,
बढ़ता हूँ प्रगति पंथ पर
विह्वलता अस्त हो गई ।

कैसे मैं तुम्हें भूल जाऊँ ।
सारा विश्वास तुम्हीं हो,
मेरा आकाश तुम्हीं हो,
सारे संसार में अकेले,
मेरे मधुमास तुम्हीं हो,
तुमको तज और कहाँ जाऊँ ।

❖❖❖

स्वच्छन्दता

अनामंत्रित,
दुर्घटनाएँ आतीं / गहरातीं।
सड़क पार–
यानी मौत को दावत।
चौराहे पर भीड़,
सिर गिनना मुश्किल,
सभी स्वच्छन्द विचरते,
लाल बत्ती माने आफत।
हाथ–पैर फूलते,
चौराहे अखाड़े की शक्ल में,
रमजान की जीवन यात्रा में,
अकस्मात ब्रेक,
जीवन में खिलवाड़।

जीने को मजबूर
कोटि–कोटि भूखे–नंगे–
रोटी के लिये बिलबिलाते।
दाना–दाना बीनते,
जोड़ते, तब भी भूखे–दीन,
अँधेरे के थपेड़ों से जूझते,
चिनगारी के लिए तरसते।
निर्दय राज,
निर्दय पूँजीपति,
उनका समन्दर पेट–
क्यों कर भर पायेगा?
भगेलू–रमपतिया–
यों ही जीने को मजबूर।

❖❖❖

आत्मा की करनी

-डा. गौरी शंकर पाण्डेय अरविन्द

चेतना अंकुरित होती,
आत्मा से मन में जागरण ज्वार।
चिन्तन में,
अर्थ, यथार्थ, सत्यार्थ का नीर बहाती,
बुद्धि प्रत्ययों को उन्मुख करती,
सम्प्रेषण भावक उर छूता–इतराता।
ज्ञान कला,
अभिव्यक्ति के नये साँचे उभारती–बनाती।
सर्जना, बुद्धि नौका का सहारा लेती,
उर–अम्बुधि में भाव तैरते।
आत्मा चित्त भूमि में,
विवेक–व्यवहार की खेती करती ।
आत्मा के रंग–धर्म–
परम विशिष्ट।

❖❖❖

प्रकृति प्रगति संग्राम

- डा. महेन्द्र प्रताप सिंह

सम्पूर्ण धरा पर लगातार,
चल रहा, अवांछित विकट युद्ध।
यह प्रगति–प्रकृति संग्राम सभी–
को करता, दुःखी,निराश, क्रुद्ध ।

यह प्रगति काल मच रही, धूम,
नूतन अन्वेषण, नव विकास।
अब प्रगति उँगलिका पर नाचत,
प्रतिपल ले, सुख की नई आस।

अब वायु, अग्नि पर विजय प्राप्त,
जग की दूरी सिमटी, अपार।
खग कुल उड़ान अब नहीं स्वप्न,
नभ में विमान की है, कतार।

नभ, चन्द्रलोक, ग्रहलोक सकल,
मानव के बिचरत, वायुयान।
वारीश धरातल पर मानव,
हो आया, उसको पूर्ण ज्ञान।

है, ताप उतरता, चढ़ता अब,
मानव इच्छा का रखे ध्यान।
घर में सारी सुख–सुविधा भर,
अब स्वर्ग लोक के हैं, समान।

❖❖❖

मन मन्दिर की ओर चलें हम

- डा. किशोरी शरण शर्मा

मन–मन्दिर की ओर चलें, हम,
जीवन को अब जोड़ चलें, हम ,
कहीं न, पथ पर, अवरोधन हो,
उर का धागा जोड़ चलें, हम।

तम का सर्व विनाश हो सके,
मानव का कल्याण हो सके।
निज की चिन्ता त्याग सकें, सब,
जन–जन का परित्राण हो सके।

हम सब बालक परम पिता के,
धर्मों का बँटवारा कैसा?
ऐसा कुछ ना करें, न सोचें,
बन जाये, अंधियारा जैसा।

भारत माँ के हम सब बच्चे,
इनका मिलकर नमन करें, हम।
जो भी इन पर आँख उठाये,
उसका मिलकर दमन करें, हम।
मन–मन्दिर की ओर चलें, हम,
उर का धागा जोड़ चलें, हम।

❖❖❖

सारा आकाश तुम्हारा है

-- रमेश गुप्त

अभी बहुत नन्हें किसलय हो,
फूल बनोगे, तब महकोगे।

अभी परिश्रम की बेला है, कहीं बैठ कर मत सुस्ताना,
समय हाथ से निकल गया तो, तुम्हें पड़ेगा फिर पछताना,
मेहनत ही सब सुख का साधन, मेहनत से तुम मत घबराना,
काँटों में खिलते गुलाब से, बाधाओं में भी मुस्काना।

छोटी सी चिनगारी तुम हो,
कल अंगारा बन लहकोगे।

आने वाले कल का सपना, तुमको ही पूरा करना है,
जीवन में भर कर गति चलना, जैसे करता यह झरना है,
तुमको ही भावी भारत की, शुचि आधारशिला धरना है,
सूना रहे न कोई कोना, निर्माण के स्वर भरना है।

सब आकाश तुम्हारा ही है,
कल तुम ही इसमें चहकोगे।

मिट्टी का ऋण तुम पर बच्चों, मिट्टी का सिंगार करो तुम,
अंधकार को दूर भगाओं, हर देहरी पर दीप धरो तुम,
दीन–दुखी जो साथी–संगी, बढ़ कर उनकी पीर हरो तुम,
सदा आपकी मेल–जोल हो, सबके दिल में प्यार भरो तुम।

नन्हें से तुम आज सितारे,
कल सूरज बनकर दहकोगे।

❖❖❖

चलो समय के साथ

- सुश्री इंदिरा परमार

नये साल के नये नजारे।
घर से निकलो, बाहर आओ,
कदम मिलाकर नाचो गाओ।
पहला दिन है नये साल का,
आसमान में खूब उड़ाओ–
भैया ! खुशियों के गुब्बारे ।
जो भी मिले, प्यार बरसाओ,
रूठा हो तो उसे मनाओ।
अगला–पिछला बैर भुलाकर,
बढ़ो साथियों, हाथ मिलाओ।
रिश्ते फूलें–फलें हमारे ।
हम बच्चों का यह कहना है,
हमको एक साथ रहना है।
सुख यदि आपस में बाँटेंगे,
तो दुख भी हँसकर सहना है।
करें प्रतिज्ञा ऐसी प्यारे।
सदा न रहती रात, साथियों,
कह दो सच्ची बात, साथियों।
दुनिया आगे बढ़ती जाती,
चलो समय के साथ साथियों।
नयी जिन्दगी हम स्वीकारें।

❖❖❖

कर्म सुगन्ध

- रश्मि अग्रवाल

मेरे जीवन के अनुभव ही,
मेरी असली थाती है।
और अकेलेपन के मेरे,
ये भी सच्चे साथी हैं।
इनमें बचपन की खुशबू है,
इनमें यौवन का खुमार है।
इनमें प्रौढ़ता की परवशता,
इनमें जीवन की बयार है।
इनमें मेरी शिक्षा–दीक्षा,
संस्कारों की है, फुलवारी।
इनमें प्रेम–प्रियतम का तो–
बालवृंद की है, किलकारी।
इनमें हैं कुछ यदि पराये,
तो कुछ मेरे अपने भी हैं।
कुछ महके, कुछ मुरझाये से,
रंग–बिरंगे सपने भी हैं।
इनमें मंजिल पा लेने का–
सुख दिखलाई देता है।
और अलौकिक रूप प्रभु का,
नित्य दिखाई देता है।
इनकी अग्नि में तपकर ही–
प्राणी कुंदन हो पाता है।
'रश्मि' कर्मों की सुगंध से,
जीवन मधुमय हो जाता है।

❖❖❖

दीप बालें

चलो रे, दीप बालें
नया पथ, हम भी पा लें।

असीम शान्ति से भरा–
हो, नया जीवन हमारा,
बदल जाये, जगत सारा।
क्रोध, अपना भुला लें।
चलो रे, दीप बालें।।

हम कला का मर्म जान,
मधुरतम जीवन को पाने,
सत्य का संकल्प ठानें।
स्वप्न सच्चा बना लें।
चलो रे, दीप बालें।।

कदम हों, दृढ़ हमारे,
रहें, हम साथ सारे।
सभी दुःख को बिसारें।
नव किरनें फैला लें।
चलो रे, दीप बालें।।

❖❖❖

अनुरोध

-अनीता श्रीवास्तव

बेहद साँझ
बेहद उदास, साँझ का निमन्त्रण–
पर मैं न गई।
डूब कर देखा–
सिर्फ उदासी और उदासी,
नया चाहकर पाया,
हर एक साँस बासी।
खोया जाता ढेरों,
बस भूल पर जरा सी।
यादों की बाती,
जैसे कीड़े हों बरसाती।
जेहन मे भर ली,
मैंने सारी बाती।
अब तो लेने दे मुझे,
निश्छल साँस बिहाँसी।

❖❖❖

मेरे राम! कहाँ हो, आओ

- डॉ. विद्या विन्दु सिंह

मेरे राम! कहाँ हो, आओ

मेरी झोली में स्नेह भरा,
सबको देने का चाव हरा।
लेने वाले ही रूठ गये,
कहते हैं वापस जाओ।
मेरे राम! कहाँ हो, आओ

जो लेने में किये न देरी,
अब ले–लेकर आँखें फेरी।
यह भवसागर डुबा रहा है,
मेरे राम! कहाँ हो, आओ

सुख–दुःख से ऊपर उठ जाऊँ,
बस तेरी गोदी सो जाऊँ।
भव–तापों से झुलस रहा जो,
मेरा यह माथा सहलाओ।
मेरे राम! कहाँ हो, आओ

निपट अकेली राह हो गयी,
मन की सारी चाह खो गयी।
सूख न जाये मन की सरिता,
निज करुणा का रस बरसाओ।
मेरे राम! कहाँ हो, आओ

❖❖❖

कहाँ पाएँगें, अपने निशान /

-डा. नलिनी पुरोहित

रहने दो,
गज भर जमीन।
रहने दो,
माटी के घेरे।
रहने दो, खुले सपने,
थोड़े तेरे,थोड़े मेरे।
मत बाँधो–सौंधी महक,
मत बाँधो,
पगडंडी के घेरे।

कहाँ मिलेगा–
फिर खुला दालान,
अतृप्त नयन–
पाएँगे कहाँ, खुला आसमान।
मतवाली बारिश–
किन प्रेमी–युगलों का कराएगी स्नान,
यौवन की धड़कन,
कहाँ दौड़, पाएगी विश्राम।
उड़ते पक्षी, थके–हारे,
कहाँ पाएँगें, अपने निशान।

छोड़ दो, थोड़ी जमीन,
मत बनाओ.....
गाँवों को वीरान
हरियाली में सजी वसुंधरा का–
मत करो, चिर विराम।
मत बसाओ, शहर को गाँवों में,
बसने दो उसे अपनी अस्मिता की
सुदृढ़ बाहों में.....!

❖❖❖

मेरा देश

- विशाखा चौरसिया

नैसर्गिक शिवं, सत्यम, सुन्दरम,
वन्दे मातरम, वन्दे मातरम।

हरी–भरी ये धरती अपनी,
वहीं ऊँचे–ऊँचे पर्वत।
फूलों से खिलीं घाटियाँ अपनी,
सर्वजन का शुचि शोभित मन्दिरम।
वन्दे मातरम, वन्दे मातरम।

जाति, धर्म, भाषा, भूषाएँ,
भले भिन्न पर, भाव एक हैं।
मातृभूमि सबकी आराध्य,
हित चिन्तन सद्भाव नेक हैं।
यही हमारी एकता का मूल मन्त्रम।
वन्दे मातरम...

हँसता रहे हमेशा बचपन,
जीवन की हो शाम सुहानी।
नारी शक्ति की रहे अस्मिता,
अपनेपन की प्रथा पुरानी।
यही हमारा लौकिक तन्त्रम।
वन्दे मातरम...

❖❖❖

'मुक्तिबोध' सरीखा कवि

- डा.अमिता दुबे

उनका सक्रिय सर्जक रूप,
अपने आस–पास–
पात्रों को चुनता है।
ज्यादातर अपने अन्दर ही,
कविता के द्रोह को सुनता है।

कवि और कविता का दंश
उन्हें अन्दर तक भेदता है,
तभी तो 'मुक्तिबोध' जैसा
एक–आध कवि
अभूतपूर्व लिखता है।
देता है, समाज को
उसकी प्रतिच्छाया।
और उभरती है उसके नाद में
आम आदमी की
दबी–घुटी चीख,
जिसे सफाई से गुनता है।

तब कही 'अंधेरे में,
कोई मुक्तिबोध सरीखा कवि
कविता की झीनी चादर बुनता है।

❖❖❖

ऐसा लखनऊ शहर हमारा

- रश्मि कुशवाहा

नवाबों की सौगात
खूबसूरत है जहां अवध की शाम
अदब यहां का लाजवाब
लक्ष्मण जी के नाम पर पड़ा,
लखनऊ शहर का नाम।
मन को लुभाये–
दिलकुशा और बॉटनिकल गार्डेन
बुद्ध, नींबू, गुलाब वाटिका है जहां
अनेक भव्य–स्थल व इमारतें–रेजीडेंसी,
भूल–भुलैया और शहीद
स्मारक जहां
दोहराती वीरों की कहानियां।
मशहूर चिकन का काम जहां
रेवड़ी खाना, पान चबाना
पतंगबाजी, मुर्गे लड़ाना
नवाबों का है शौक पुराना।
नृत्य–संगीत, कलाओं का भण्डार
भात्खंडे जहां,
तहजीब दर्शाता लखनऊ महोत्सव।
देश–परदेश घूमा
लखनऊ शहर जैसा कोई और न दूजा
मिली–जुली संस्कृति यहां की
पर्यटकों को आकर्षित करती,
भाषा पहले आप की।
झलकती शालीनता पहनावे में
माथे पे बिंदिया, साड़ी जहां।
सारे शहर की रौनक समेटे
जगमगाता हजरतगंज जहां।
अमीरुद्दौला पुस्तकालय
ज्ञान ही ज्ञान पाये जहां
जन्में–शायर, नेता, कवि
और कलाकार
जहां गोमती नदी ने शहर का
सौन्दर्य बढ़ाया
गर्व से कहते यहां के वासी
ऐसा लखनऊ शहर हमारा।

❖❖❖

गजल

-गीता श्रीवास्तव

चाह रही हूँ, दूँ, जो मेरा तन–मन, माँग रहा,
ठोकर मारूँ जो संयम का बन्धन माँग रहा।
संन्यासी के छद्म भेद कर जान गयी हूँ, मैं,
होठों की लाली, माथे का चन्दन माँग रहा।

तुम इशारे से कहो तो बाँह में बादल भरूँ,
शबनमी बरसात बन जाओ तो मैं काजल भरूँ।
इन्द्रधनु की कामना में नयन झुक आये नशीले–मदिर,
तुम सुनाओ बाँसुरी, मैं पाँव में पायल भरूँ।

मैं स्वयं में स्वयं खो गयी,
कब जगी और कब सो गयी।
गति की चाह ऐसी जगी,
गीत में गीतमय हो गयी।

जाने क्या इस शहर को अब हो गया है,
दर्द का मारा बेचारा सो गया है।
कैसा मौसम, कौन सी आयी हवा,
है घना कुहरा, उजाला खो गया है।

❖❖❖

आ गया बसन्त,आने दो

- डा. शांति देव बाला

आ गया बसन्त, आने दो,
हमें नहीं कोई गीत गाना है।
सिर पर छः– छः ईंटें लादे,
ऊपर–नीचे आना – जाना है।
आ गया बसन्त, आने दो।

आना था, उसको इस तिथि पर,
बैठा तो कैलेन्डर पर आकर।
अमलतास के फूलों नीचे,
देख उसे, हमें नहीं बौराना है।
आ गया बसन्त, आने दो।

कवि गायें अब बसन्त तराने,
सरसों! धरती की पीली चूनर,
हमको सरसों को खूब सुखाकर,
राई का तेल पिराना है।
आ गया बसन्त, आने दो।

वे खायें सब पीले चावल,
भात केसरिया, जर्दा पीला।
हम सब तो धाबे के नौकर,
गर्म पकौड़ी तलते जाना है।
आ गया बसन्त, आने दो।

वे सब पहनें, पीली साड़ी,
गोटे लचके जरी किनारी,
हम पीले जांडिस के मारे,
झड़े पीत–पत्र से बारी–बारी।
आ गया बसन्त, आने दो।

क्यों बसन्त के राग अलापें?
क्यों शारदा को आराधें?
रहते आये सदा निरक्षर,
काला अक्षर भैंस बराबर,
आज भी भैंस चराना है।
आ गया बसन्त, आने दो।

कौन परम्परा पिछली ढोयें,
हम भारत की नयी किशोरी,
पहन टाप्स जीन्स औ कैप्री,
स्कूटर फुर्र हो जाना है।
आ गया बसन्त, आने दो।

पीला कुर्त्ता पहने ब्रह्मचारी,
पढ़े पुराण, बटुक लाचारी,
हम तो मिल्स बून्स ही बाँचें,
लन्दन, अमरीका जाना है।
आ गया बसन्त, आने दो।

हम कान्वैन्टों में पढ़ने वाले,
कौन बसन्त का राग अलापे,
हम नाचैं गोविन्दा जैसे,
फिर मैक्डानल्ड भी जाना है।
आ गया बसन्त, आने दो।

क्यों बसन्त के छन्द सुनायें,
फागुन–वागुन, चैती गायें,
वेलैन्टाइन के लिए संदेशे,
दिल दहलायें, दिल बहलायें।
आ गया बसन्त, आने दो।
जा रहा बसन्त, जाने दो।

❖❖❖

चिंगारी

- कीर्ति

दबी हुई जो चिंगारी वह फिर से भड़क उठेगी
आसान समझ न मौन रूप ये बाँहें फड़क उठेगी
परमाणु बम का खौफ जताकर
क्या तुम हमें डराओगे
अंगारों की राह चलोगे रग–रग तड़प उठेगी
दबी हुई जो चिंगारी वह फिर से भड़क उठेगी
काश्मीर के आम सितारे
क्या तोड़ोगे तुम
मचल रहे तूफानों के रुख
क्या मोड़ोगे तुम
हो जाओगे खाक, बिजलियां कड़क उठेंगी
दबी हुई जो चिंगारी वह फिर से भड़क उठेगी
मानवता कर रही विलाप
ये करुणा सिसक रही है
शांति प्रेम की अनुयायी
हर ममता मचल रही है
बारूदों के ढेर पर बैठी दुनिया तड़प उठेगी
दबी हुई जो चिंगारी वह फिर से भड़क उठेगी।

❖❖❖

काम करें दिन रात हम

जन्म शताब्दी वर्ष मनायें, हम पूरे उल्लास से ।
जीवन में सब खुशियाँ भर लें,सुन्दर आत्म विकास से।।

श्रद्धा और समर्पण में अब, कमी न रहने पाये।
मनोयोग–पुरुषार्थ लगाने, हर जन आगे आये।।
जीवन को हम सब विकसायें, गुरू कि कृपा मिठास से।।
जीवन में सब.....

कड़ी धूप, आँधी–पानी में, पैर न रुकने पायें।
गुरु अनुशासन में हम सब जन, कली–कली विकसायें।
जीवन का हर कोना महके, मीठी–मधुर सुवास से ।
जीवन में सब.....

चिंतन–चरित्र, व्यवहार हमारा, हो गुरु के अनुकूल।
अहं त्याग, धन–साधन देकर ,दे श्रद्धा के फूल ।
जगती का कण–कण भर जायें, सुन्दर सुखद उजास से ।।
जीवन में सब .....

मिलजुलकर, उल्लासपूर्वक, काम करें दिन रात हम।
काम नहीं कल पर छोड़ें, अभी करें शुरुआत हम।
दृष्टिकोण परिवर्तित करके, बच लें महाविनाश से।।
जीवन में सब.....

❖❖❖

ज्ञान की शुचि मशालें जलाते रहेंगे

-विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

सपन सब तुम्हारे सजाते रहेंगे।
समर्पण की सरगम बजाते रहेंगे।

शपथ लें रहे हैं रुकेंगे नही हम।
आगे अनय के झुकेंगे नहीं हम।
श्रेष्ठ पथ पर कदम हम बढ़ाते रहेंगे।
समर्पण की सरगम बजाते रहेंगे।

ज्ञान क्रान्ति के हम सिपाही प्रबल हैं।
नस–नाड़ियों में भरा तीव्र बल है।
ज्ञान की शुचि मशालें जलाते रहेंगे।।
समर्पण की सरगम बजाते रहेंगे।

❖❖❖

आपकी तमन्ना थी

- पं. प्रवीन त्रिपाठी

एक मुद्दत से हमें आपकी तमन्ना थी,
पास पाया तो जुबां हमसे हिलायी न गयी।

और पुरजोर ख्वाहिशें थीं बात करने की,
बात आयी तो बात करके बतायी न गयी।

दर्द दिल का निहां'बसन्त' रह गया दिल में,
खोलकर दिल की वो तस्वीर दिखाई न गयी।

आह बेताबिए तबीयत जिगर पुकार उठा,
प्यास दिल की मेरे उस दिल से बुझाई न गयी।

ये दिल्लगी भी अजब चीज है 'बसन्त' सुनो,
जैसी तुमसे लगी औरों से लगाई न गई।

उफ ये तीरे नजर कमाला उनका,
हाथ में लेना यूँ रूमाल उनका।

कुछ न कहियेगा नाज वाले हैं,
उनके जलवे बड़े निराले हैं।

पाँव रखने का फन, सुभान अल्लाह,
सितम ढाने का फन, सुभान अल्लाह।

❖❖❖

मुक्तक

- योगेन्द्र वर्मा 'व्योम'

त्यागकर स्वार्थ का छल भरा आवरण,
तू दिखा तो सही प्यार का आवरण।
शूल भी फिर नहीं दे सकेंगे चुभन,
जब छुअन का बदल जायेगा व्याकरण।

स्वप्न जो भी सुनहरा नयन में पला,
दूसरों को सदा स्वप्न वो ही खला।
उपवनों को भला दोष दें, किस तरह,
खुशबुओं ने सदा हर सुमन को छला।

देखकर प्रीत के भाव ठहरे हुए,
ठेस मन को लगी, घाव गहरे हुए।
अनकही ही रही आँसुओं की व्यथा,
शब्द गूँगे हुये, वाक्य बहरे हुए।

सत्य के तो बिना व्यक्ति जीवित नहीं,
सत्य की राह में ग्लानि किंचित नहीं।
झूठ बेशक परेशान करता रहे,
पर कभी सत्य होता पराजित नहीं।

❖❖❖

आप मुझे नहीं जानते

-अजय सिंह वर्मा

मेरी मर्जी बिना,
पत्ता नहीं हिल सकता,
कोटा, परमिट, ठेका,
टिकट नहीं मिल सकता,
मैं जन–जन के मन में व्याप्त हूँ,
सृष्टि के कण–कण में व्याप्त हूँ,
मुझे पूजने वाले पूज्य हैं,
विरोधी त्याज्य हैं,
मेरी वक्र दृष्टि
नौकरी से हटाती है,
कृपा दृष्टि बहाल कराती है।

मैं ही सरकारें गिराता हूँ,
मैं ही बचाता हूँ,
मैं ही बनाता हूँ।
मैं एक युग हूँ,
एक नयी संस्कृति हूँ।
पहले लोग मुझे ग्रहण करते थे,
देते थे,
पाते थे।
अब लोग खाते हैं,
बिना डकार लिए पचाते हैं।
जैसे मैं कोई निवाला हूँ,
वैसे मैं हवाला हूँ,
घोटाला हूँ।
प्रसाद, चढ़ावा, मन्नत, मिन्नत,
मेरे ही विभिन्न अवतार हैं।

मैं सत्य हूँ, शिव हूँ, सुन्दर हूँ,
शाश्वत हूँ,
साकार हूँ, निराकार हूँ।
अरे! आपने मुझे नहीं पहचाना–
मैं भ्रष्टाचार हूँ।

❖❖❖

आज का आदमी

- डॉ. अवधेश कुमाार श्रीवास्तव

आज का आदमी...
काटों की चुभन लेकर चलता है
चाहता है–
फूलों की नाजुकी का अहसास।
कडुवाहट सर्वत्र बिखेरता हैं।
अपेक्षा करता है–सब से मिठास।
भला सोचो–
नीम का वृक्ष–
क्या दे सकेगा–रजनीगंधा का सुवास?
हेमावन!
यदि तू सचमुच चाहता है
कांटों से नाजुकी का अहसास
और कडुवाहट से मिठास–
तो पहले प्यार की भाषा पढ़
मानवता की नींव पर–
सत्य का महल गढ़–
दूसरों के सुखों को अपना समझ
तो बुझ जायेगी तेरी प्यास
और तब–
नीम के वृक्ष से
तुझे मिलेगा–रजनीगंधा का सुवास।

❖❖❖

सुदूर मेरा लक्ष्य

-मेदिनी कुमार केवल

नजर उठाकर मैंने देखा, बहुत दूर मेरा लक्ष्य था,
पग–पग में काँटे खड़े, पर आगे मेरा लक्ष्य था।
कब मैं पहुँचूगा उस दिशा तक,
सोचा मैंने एक पल रुककर।
थोड़ा संदेह रहा मेरे मन में,
क्या मैं चल पाऊँगा ऊबड़–खाबड़ राह में।
इस पल में यह किया है निर्णय,
मेरा विश्राम नहीं मध्य तक।
कठिनाइयों की भारी भीड़ में,
सुदूर खड़ा था मेरा लक्ष्य।
मन का संबल उठा लिया है,
निराशा को करके भक्ष्य।
यह मेरा दृढ़ विश्वास है,
निश्चय मिलेगा मेरा लक्ष्य।
सत्यपथ पर कदम उठाएँ,
कर्तव्य पथ पर अडिग बनें।
जो सपने बुने हैं हम ने,
निश्चय पाऊँगा मैं, जूझ रहा हूँ संघर्षों से।

❖❖❖

बुढ़ापा

-कुलदीप सिंह सोनी

टूटी चारपाई पर–
उधड़ी रजाई–में लिपटी,
बहुओं के तानों,
बेगाने हुए, बेटों से दुःखी,
पति की–याद में,
रब से–फरियाद में,
तन में–बुझी आग लिए,
मन में–कसक लिए–
पड़ी है, अकेली–निढाल–गुमसुम।
परिवार से अलग–थलग,
चिंता में हुई सुन्न,
कभी उसी का था–ये घर और परिवार,
अब किसी को नहीं–उसकी दरकार।
ना अब आँसू–ना खून–ना पसीना है,
घुट–घुट कर इसी तरह अब उसे जीना है।
सुख चैन बन गए–उसके लिए बीता कल,
अब लौट के आने वाले–नहीं कभी वो पल।
अब दिन कटता नहीं, रात गुजरती नहीं,
उसकी हर रात–अब अमावस की रात हैं।

❖❖❖

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल

जन्म - 11 अक्टूबर 1884 निधन -2 फरवरी 1941

आदि हेतु, अनादि और अनन्त, दीन दयाल।
जोरि जुग कर करत विनती सकल भारत बाल ।।
विविध विद्या कला सीखैं त्यागि आलस घोर।
दूर दुख दारिद बहावैं देश को इक ओर ।।

कृष्ण देव प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी'

जन्म - 11 नवम्बर 1885 निधन - 6 मई 1968

काशी अविनाशी का अदना निवासी एक,
कृष्णदेव नाम मगर रंग नहीं काला है।
सेवक सरस्वती का, दास दयानंद का हूँ,
टीचरी में निकला दिमाग का दिवाला है।
काव्य लिखता हूँ, नहीं हँसने की चीज निरी,
रचना में व्यंग औ विनोद का मसाला है।
पावन प्रसाद 'दीन' जी का मिला 'बेढब' है,
सूर हूँ न तुलसी, पंथ मेरा निराला है।